

□ श्री महावीर कोटिया, जयपुर
[विचारक, लेखक]

श्री कृष्ण का वासुदेवत्व : जैन हृषिट



भारतीय-साहित्य में श्री कृष्ण के विशिष्ट स्वरूप का परिचय देने वाला ग्रन्थ 'महाभारत' है। महाभारत के श्री कृष्ण स्वयं भगवान विष्णु हैं, जिन्होंने संसार के कल्याणार्थ देवकी-वसुदेव के यहाँ जन्म लिया है।^१ वे भगवान समस्त सृष्टि के उपादान कारण हैं, अखिल विश्व—सभी चराचर—के सर्जक हैं, अव्यक्त हैं, अविनाशी हैं और सबके पूज्यतम हैं।^२ भीष्मपर्वान्तर्गत गीता में स्वयं उनसे कहवाया गया है—‘मैं सभी प्राणियों का स्वामी और अजन्मा हूँ। मेरे स्वरूप में कभी व्यथ अथवा विकार नहीं होता, तथापि अपनी ही प्रकृति में अधिष्ठित होकर मैं अपनी ही माया से जन्म लिया करता हूँ।’^३

महाभारतकार ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही ‘नारायणं नमस्कृत्य नरचैव नरोत्तमम्’ तथा ‘ॐ नमो भगवते वासुदेवाय’ मन्त्रों का विधान कर उन भगवान नारायण, वासुदेव को नमस्कार किया है। इस प्रकार महाभारत में विष्णु के अवतार, देवकी-वसुदेव के पुत्र श्री कृष्ण स्वयं भगवान वासुदेव हैं, नारायण हैं ! वस्तुतः महाभारत में श्री कृष्ण वासुदेव तथा नारायण पर्यायवाची हैं।

जैन-परम्परा में भी श्री कृष्ण, वासुदेव हैं, नारायण हैं ! जैन-साहित्य में जिन त्रेषठ-शलाकापुरुषों के चरित वर्णन की प्रधानता है, उसमें श्री कृष्ण, शलाका पुरुष वासुदेव (नारायण) हैं ! उनके वासुदेव रूप का ही जैन-साहित्य में वर्णन है। तदनुसार उनके विशिष्ट स्वरूप की विशेषताएं जैन-साहित्य में निम्न प्रकार हैं :—

(१) वे असाधारण वीर व पराक्रम सम्पन्न हैं। उनके विभिन्न वीरतापूर्ण व साहसिक कार्यों से बाल्यावस्था से ही उनके असाधारण व्यक्तित्व का परिचय मिलने लगता है।

- (१) अनुग्रहार्थ लोकानां विष्णुर्लोक नमस्कृतः ।
वासुदेवात् तु देवक्यां प्रादुर्भूतो महायशः ॥—आदिपर्व ६३।६६
- (२) कृष्ण एव ही लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्ययः ।
कृष्णस्य ही कुते विश्वमिदं भूतं चराचरम् ॥
एव प्रकृतिरव्यक्ता कर्त्तव्यैव सनातनः ।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात् पूज्यतमाऽच्युतः ॥—सभा पर्व ३८।२३-२४
- (३) गीता ४।६

आपार्थिष्वट्सु अभिगृह्णेद्वै आपार्थिष्वट्सु अभिगृह्णेद्वै
श्रीआगन्द्रं श्रीआगन्द्रं श्रीआगन्द्रं श्रीआगन्द्रं



आपायप्रवर्टता भगवन् द्वृति आपायप्रवर्टता भगवन् द्वृति श्रीआवन्दत्रैश्च अथ द्वृति श्रीआवन्दत्रैश्च अथ द्वृति



१५६ इतिहास और संस्कृति

(२) वे अत्यधिक प्रभावशाली व शक्तिसम्पन्न शासक हैं। उन्हें अर्द्धचक्रवर्ती अथवा त्रिखण्डाधि-पति भी कहा गया है। जैन-भूगोल^४ के अनुसार सम्पूर्ण देश को ६ खण्डों में विभाजित किया गया है। इनमें तीन खण्ड उत्तर भारत के तथा तीन खण्ड विद्युत्याचल (विजयार्द्ध पर्वत) से नीचे के अर्थात् दक्षिण भारत के। श्रीकृष्ण का द्वारका सहित सम्पूर्ण दक्षिण क्षेत्र में प्रभाव था, अतः उन्हें अर्द्धचक्रवर्ती कहा गया है।

(३) अर्द्धचक्रवर्ती शासक होने के कारण वे शक्ति, धनुष, गदा, चक्र, कृपाण, शंख और दण्ड आदि सात रथों के धारक थे।^५

(४) उनके कार्यों से अधर्म, अनाचार व अशान्ति का नाश होता है। वे देश में धर्म तथा न्याय की स्थापना करते हैं।

(५) वे अपने समान बली, शक्तिशाली व प्रभुत्व सम्पन्न शत्रु-राजा, जिसे कि जैन-परम्परा में प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण) कहा है; जो कि बुरी शक्तियों—अधर्म, अनाचार, अन्याय आदि को प्रश्न्य देते हैं, हनन करते हैं। इस हृष्टि से श्रीकृष्ण का प्रतिद्वन्द्वी जरासन्ध था। उसके हनन से लोक में सर्वत्र प्रसन्नता छा जाती है और स्वयं देवगण उनका वासुदेव रूप में अभिनन्दन करते हैं तथा उन पर पुष्पबृष्टि करते हैं।

(६) वे अत्यधिक धार्मिक वृत्ति के हैं। धर्म प्रभावना में उनका पूर्ण योगदान रहता है। साथ ही राज्य, वैधव तथा प्रभुता के प्रति उनका मोह का भाव भी है, इसलिए तपस्या अथवा वैराग्य के महान् पथ के वे साधक नहीं बन पाते हैं।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि जैन-परम्परा में वासुदेव (नारायण) से तात्पर्य महान् पराक्रमी व अत्यधिक शक्तिसम्पन्न अर्द्ध चक्रवर्ती शासक से है, जो कि अपने असाधारण बल, पराक्रम व शक्ति के द्वारा अनाचारी और अत्याचारियों का उन्मूलन करके, पीड़ितों व दीन-दुखियों का उद्धार करते हैं और इस प्रकार धर्म की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करते हैं। उनका आदर्श मुख्यतः लोकरक्षा का है। अतः समाज में उनके बीर स्वरूप की पूजा होती है। स्पष्ट ही 'वासुदेव' शब्द का यह प्रयोग महाभारत में प्रयुक्त देवाधिदेव भगवान के पर्यायवाची शब्द 'वासुदेव' से पूर्णतः भिन्न है।

'वासुदेव' शब्द की इस अर्थ में प्रयुक्ति से ऐसी सम्भावना भी प्रकट होती है कि तत्कालीन भारत में वासुदेव एक विरुद्ध था, जिसे अत्यधिक पराक्रमी व शक्तिशाली शासक ग्रहण किया करते थे। श्रीकृष्ण

(४) गंगा सिंधुर्णइति वेयडढगेण भरहेत्तम्मि ।

छक्खंडं संजादं ताणं विभागं पहवेमो ।

उत्तर दक्षिण भरहे खंडाणि तिणि होति पतेवकं ।

दक्षिण तिय खंडेसु अजाखंडोत्ति मज्जिओ ॥

—तिलोयपण्णति ४।२६६-६७

(५) मत्ती कोदंड गदा चक्रक्षिणाणि संख दंडाणि ।

इय सत्त महारयणा सोहते अर्द्धचक्रीण ॥—वही ४।१४३४

ने यह विशुद्ध धारण किया अतः वे वासुदेव भी कहलाये। यह बात निरी सम्भावना नहीं है। इसके प्रमाण निम्न उल्लेखों में देखे जा सकते हैं :—

(अ) हरिवंश पुराण (भविष्य पर्व) में काशीराज पौड़क का कथानक आता है। इसके अनुसार जब श्रीकृष्ण कैलाश पर तपस्या कर रहे थे, तब पौड़क ने अपने साथी राजाओं को बुलाकर एक सभा की और उसमें घोषणा की, “कृष्ण, छल और घमण्ड से मेरी बराबरी कर रहा है। मैंने अपना नाम वासुदेव रखा है, इसलिए उसने भी अपना नाम वासुदेव रख लिया है। मेरे पास जो अस्त्र-शस्त्र हैं, वैसे ही नाम वाले अस्त्र-शस्त्र उसने भी धारण करना प्रारम्भ कर दिया है।” इस घोषणा के पश्चात अपने अधीनस्थ राजाओं को लेकर उसने द्वारका पर आक्रमण कर दिया। इस कथानक से यह स्पष्ट आभास होता है कि कृष्ण और पौड़क का संघर्ष मूलतः वासुदेव नाम धारण करने को लेकर हुआ।

(ब) जैन-मान्यता की बात ऊपर कही जा चुकी है। जैन-कथा के अनुसार श्रीकृष्ण द्वारका सहित दक्षिण भारत के प्रभावशाली अधिपति थे। उत्तर भारत में जरासन्ध उनकी टक्कर का राजा था। इसलिए श्रीकृष्ण व जरासन्ध की प्रतिद्वन्द्विता ने उग्र रूप धारण कर लिया। मूल जैन-स्रोतों के अनुसार तो महाभारत का युद्ध श्रीकृष्ण व जरासन्ध के मध्य लड़ा गया। कौरव-पाण्डिवों ने विपरीत पक्षों से इसमें भाग लिया। इस युद्ध की समाप्ति श्रीकृष्ण द्वारा जरासन्ध-वध से होती है। इस अवसर पर देवताओं द्वारा श्रीकृष्ण का ‘वासुदेव’ रूप में अभिनन्दन करने तथा पुष्पवृष्टि करने का वर्णन जैन-पुराणों में हुआ है। इसी युद्ध के परिणामस्वरूप श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव को मगध के तिहासन पर प्रतिष्ठित किया और इस प्रकार उत्तर भारत में भी अपने प्रभाव का प्रसार किया। ध्यान देने की बात है कि जैन-परम्परा में जरासन्ध को प्रतिवासुदेव कहा गया है, परन्तु शक्ति, पराक्रम व प्रभाव में दोनों को समान कहा गया है। इस विवरण से भी यही ध्वनित होता है कि कृष्ण-जरासन्ध की प्रतिद्वन्द्विता का आधार ‘वासुदेवत्व’ था, तभी तो कृष्ण की विजय पर उनके वासुदेव रूप में अभिनन्दित होने की बात कही गई है।

(स) घत जातक के अनुसार यह स्पष्ट है कि बौद्धों ने भी श्रीकृष्ण के लिए वासुदेव नाम ही प्रयुक्त किया है। बौद्ध-कथा में भी वासुदेव की शक्ति व पराक्रम का ही वर्णन है। कंस को मारकर उन्होंने अयोध्या के राजा को जीता और इस प्रकार अपनी शक्ति बढ़ाते हुए द्वारका जाकर अपनी राजधानी स्थापित की। इस उल्लेख से भी ‘वासुदेव’ के श्रेष्ठ व शक्तिशाली राजा के स्वरूप का बोध होता है।

इससे यही निष्कर्ष पुष्ट होता है कि अपने वास्तविक ऐतिहासिक रूप में देवकी-वसुदेव के पुत्र, यादव-कुल-शिरोमणि, वीरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण, द्वारका के शक्तिशाली अधिपति व एक प्रभावशाली राजा थे। उनके देवाधिदेव रूप में प्रतिष्ठित हो जाने पर कालान्तर में जो उनके साथ अनेक प्रकार की लीलाओं आदि की बातें जुड़ गई हैं, उनका श्रीकृष्ण के महान् चरित्र से वस्तुतः कोई सम्बन्ध नहीं। अपने मूल रूप में द्वारकाधीश श्रीकृष्ण एक अलौकिक वीर पुरुष हैं और यही सम्भावना है कि उनकी वीर-पूजा को ही सर्वप्रथम प्रतिष्ठा मिली। जैन-साहित्य में उनकी वीर-पूजा को ही स्थान मिला है। चूंकि जैन-दर्शन किसी परम सत्ता (परमात्मा) के अस्तित्व को स्त्रीकार भी नहीं करता है, अतः उसके अवतार रूप में या स्वयं उसी के रूप में श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा जैन-साहित्य में सम्भव भी नहीं थी।

**उपार्थप्रवट्तु अभिगृह्णेतु उपार्थप्रवट्तु अभिगृह्णेतु
श्रीआवद्वद्रेष्टु अथेऽप्तु श्रीआवद्वद्रेष्टु अथेऽप्तु**

